

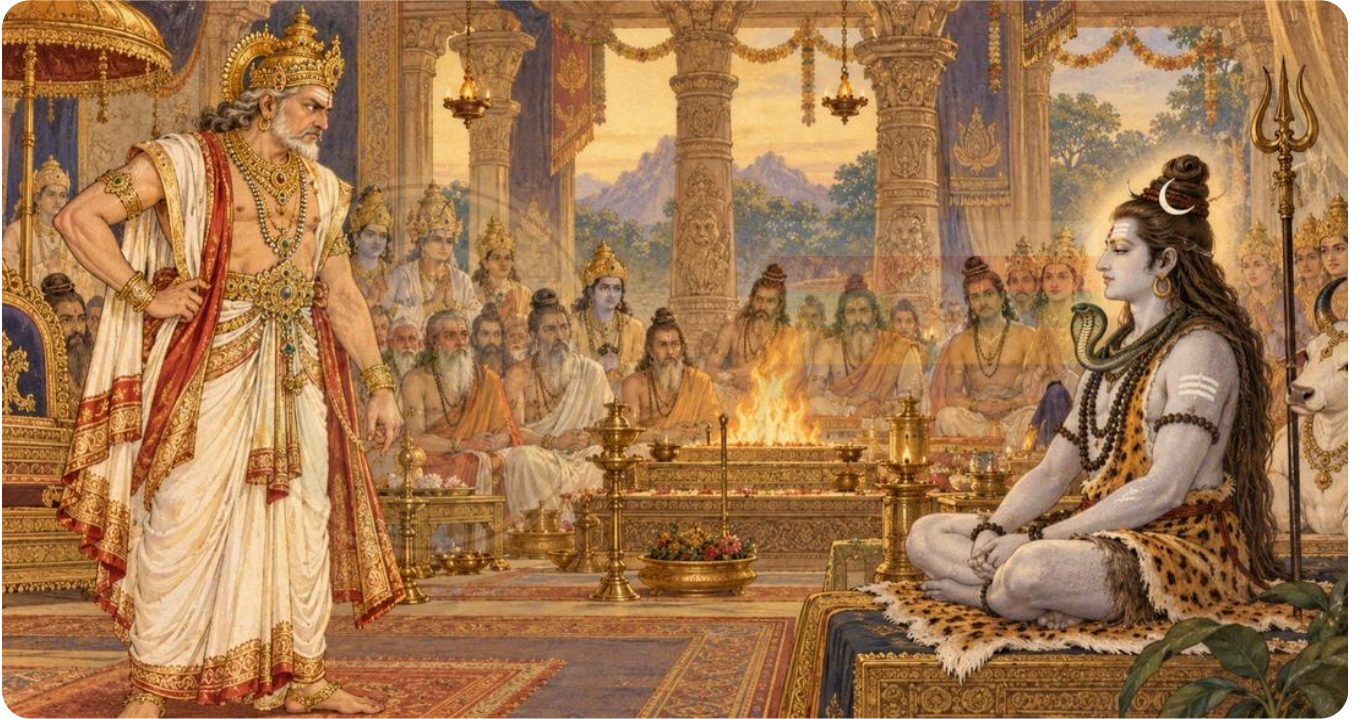
श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 2: दक्ष का शाप

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



ऋषियों और देवताओं की एक महती सभा में एक हृदय अभिमान से विषाक्त हो उठता है: दक्ष अपने जामाता भगवान् शिव पर जलती हुई दृष्टि डालते हैं — और एक ऐसा कलह आरम्भ होता है जो उनकी पुत्री के प्राण ले लेगा।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

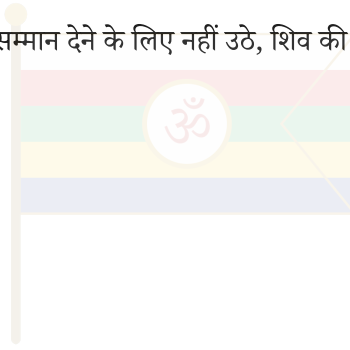
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। चतुर्थ स्कन्ध का प्रथम अध्याय एक छाया पर समाप्त हुआ था: वह संक्षिप्त, शोकपूर्ण उल्लेख कि सती, दक्ष की सबसे छोटी कन्या तथा भगवान् शिव की समर्पित पत्नी, ने अपने पिता के अपने पति के प्रति द्वेष पर क्षुब्ध होकर अपना शरीर त्याग दिया। यह द्वितीय अध्याय उस छाया द्वारा उठाए प्रश्न

का उत्तर देता है। विदुर इसे समझ नहीं पाते — दक्ष, जो अपनी कन्याओं से इतना स्नेह करते थे, समस्त प्राणियों में सबसे सौम्य तथा सबसे शुभ से द्वेष कैसे करने लगे? मैत्रेय का उत्तर शास्त्रों की महान् चेतावनी-कथाओं में से एक है: आहत अभिमान की, क्रोध में उच्चारित एक शाप की, प्रति-शापों की एक शृंखला की, तथा एक श्वसुर और जामाता के बीच दुःखद विच्छेद की कथा — जो जामाता स्वयं भगवान् शिव थे। यह अपमान को हृदय पर ले लेने की भयानक कीमत का अध्याय है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 2 (द्वितीय अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: दक्ष का शाप
- मुख्य वक्ता: महर्षि मैत्रेय, विदुर को अपना उपदेश जारी रखते हुए
- मुख्य श्रोता: विदुर, जो दक्ष के द्वेष के विषय में एक प्रश्न से अध्याय का आरम्भ करते हैं
- मुख्य स्थान: प्रजापतियों का एक महान् यज्ञ-सत्र, जिसमें ऋषि, देवता तथा अग्नि-देवता उपस्थित थे
- मुख्य विषय-वस्तु: किस प्रकार दक्ष, इस अपमान से कि भगवान् शिव उन्हें सम्मान देने के लिए नहीं उठे, शिव की निन्दा करके शाप दे बैठे; नन्दीश्वर तथा ऋषि भृगु के प्रति-शाप; तथा शिव का मौन प्रस्थान
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 2, श्लोक 1-35
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



विदुर का विस्मय: शिव से द्वेष कोई कैसे कर सकता है?

विदुर सच्चे विस्मय से आरम्भ करते हैं। वे मैत्रेय से पूछते हैं — दक्ष, जो अपनी कन्याओं से इतना स्नेह रखते थे, भगवान् भव, समस्त प्राणियों में सबसे सौम्य, से द्वेष कैसे करने लगे, और इस क्रम में अपनी ही पुत्री सती की उपेक्षा कैसे कर बैठे? इससे भी बढ़कर, विदुर इस विचार पर ही चकित हैं कि शिव से द्वेष कोई कर भी कैसे सकता है।

कस्तं चराचरगुरुं निर्वैरं शान्तविग्रहम् ।
आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत् ॥ २ ॥

kas tañ carācara-gurum nirvairam śānta-vigrahaṁ ātmārāmaṁ katham dveṣṭi jagato daivataṁ mahat

अर्थ: उनसे द्वेष कौन कर सकता है — जो समस्त चराचर के गुरु हैं, वैररहित हैं, शान्त-स्वरूप हैं, आत्मा में ही रमण करने वाले हैं, तथा सम्पूर्ण जगत् के महान् आराध्य हैं? (स्कन्ध 4, अध्याय 2, श्लोक 2)

बताइए, विदुर आग्रह करते हैं, कि श्वसुर और जामाता के बीच ऐसी कटुता किस कारण उत्पन्न हुई कि उसने सती को अपने अत्यन्त दुर्त्यज प्राण त्यागने पर विवश कर दिया।

देवताओं की एक सभा, और एक अपमान

मैत्रेय विदुर को एक भव्य अवसर पर ले जाकर उत्तर देते हैं। बहुत पहले, समस्त श्रेष्ठ द्रष्टा, ऋषि तथा देवगण — यज्ञ-अग्नियों के अधिष्ठाता देवताओं सहित — अपने परिचरों के साथ प्रजापतियों द्वारा आयोजित एक महान् यज्ञ-सत्र में एकत्र हुए। इस सभा में दक्ष आए, सूर्य के समान देदीप्यमान, और उनके तेज ने सभा को इतना अभिभूत किया कि वहाँ उपस्थित सभी उनके सम्मान में अपने आसनों से उठ खड़े हुए — सभी, केवल दो को छोड़कर: ब्रह्मा, उनके अपने पिता, तथा भगवान् शिव।



जैसे ही देदीप्यमान दक्ष प्रजापतियों की महान् यज्ञ-सभा में प्रवेश करते हैं, समस्त ऋषि तथा देवगण उनके सम्मान में उठ खड़े होते हैं — केवल ब्रह्मा, उनके पिता, तथा भगवान् शिव को छोड़कर (श्लोक 4-7)।

दक्ष ने ब्रह्मा को प्रणाम किया, उनकी अनुमति ली, और अपना आसन ग्रहण किया। किन्तु जब उन्होंने देखा कि भगवान् शिव पहले से विराजमान हैं और उन्हें कोई विशेष सम्मान नहीं दे रहे, तो दक्ष के भीतर कुछ टूट गया। वे इसे सह न सके। अपने रोष को रोक न पाते हुए, उन्होंने शिव पर ऐसी क्रोधपूर्ण दृष्टि गड़ाई मानो वे उन्हें वहीं भस्म कर देंगे।

प्राङ्निषण्णं मृडं दृष्ट्वा नामृष्यत्तदनादृतः ।

उवाच वामं चक्षुर्भ्यामभिवीक्ष्य दहन्निव ॥ ८ ॥

*prāñ-niṣaṇṇaṃ mṛdaṃ dṛṣṭvā nāmṛṣyat tad-anādṛtaḥ uvāca vāmaṃ cakṣurbhyāṃ abhivikṣya
dahann iva*

अर्थ: शिव (मूड, कृपालु) को पहले से आसीन तथा अपने द्वारा असम्मानित देखकर दक्ष यह सह न सके; उन पर अपनी आँखों से मानो भस्म करती दृष्टि डालते हुए वे बोले। (स्कन्ध 4, अध्याय 2, श्लोक 8)

शुभस्वरूप की निन्दा

आगे जो हुआ वह एक दीर्घ तथा कटु भर्त्सना थी। यह दावा करते हुए कि वे न अज्ञान से बोल रहे हैं न द्वेष से, अपितु सद्गुण के रक्षक के रूप में, दक्ष ने शिव को निर्लज्ज, अहंकारी, सज्जनों के मार्ग का उल्लंघन करने वाला कहा। बढ़ते रोष के साथ उन्होंने स्मरण किया कि किस प्रकार उन्होंने अपनी मृगनयनी कन्या इस “वानर जैसी आँखों वाले” को दी, जिसने उनके आने पर न उठकर, न वचन से कोई शिष्टाचार दिखाया। उन्होंने शिव के जीवन-ढंग की हर बात का उपहास किया: कि वे प्रेतों तथा भूतगणों से घिरे भयंकर श्मशानों में विचरते हैं, बाल बिखरे, कभी हँसते कभी रोते, उन्मत्त की भाँति; कि वे चिताओं की राख में स्नान करते हैं, मुण्डों की माला तथा मानव-अस्थियों के आभूषण पहनते हैं; कि यद्यपि वे “सर्वमंगल” शिव कहलाते हैं, वे (दक्ष के रोषपूर्ण कथन में) अशुभ हैं, दुष्ट प्रेतों के स्वामी। कटुता से दक्ष ने घोषित किया कि यह तो केवल ब्रह्मा के आग्रह पर था कि उन्होंने अपनी सद्गुणी कन्या ऐसे व्यक्ति को दी।

इस दृश्य की त्रासदी यह है कि प्रत्येक अपमान एक ऐसे प्राणी पर गिरता है जो, जैसा विदुर ने अभी कहा था, किसी से द्वेष नहीं करता और पूर्णतः शान्त रहता है। शिव एक शब्द भी उत्तर नहीं देते।

शाप

शिव की निन्दा करने के पश्चात्, जो बिना तनिक भी प्रतिरोध दिखाए अविचल बैठे रहे, दक्ष ने थोड़ा जल आचमन किया — किसी गम्भीर शाप की औपचारिक भूमिका — और अपना शाप उच्चारित किया।

अयं तु देवयजन इन्द्रोपेन्द्रादिभिर्भवः ।
सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाधमः ॥ १८ ॥

ayaṁ tu deva-yajana indropendrādibhir bhavaḥ saha bhāgaṁ na labhatāṁ devair deva-gaṇādhamah

अर्थ: यह भव (शिव), देवगणों में अधम, अब इन्द्र, उपेन्द्र आदि अन्य देवताओं के साथ यज्ञ-भाग न पाए। (स्कन्ध 4, अध्याय 2, श्लोक 18)



शाप की औपचारिक विधि में जल आचमन करते हुए, क्रुद्ध दक्ष भगवान् शिव को शाप देते हैं — कि उन्हें यज्ञ-भाग न मिले — जबकि सभा भयभीत होकर देखती है (श्लोक 17-19)।

यद्यपि सभा के प्रमुख सदस्यों ने उन्हें इस मार्ग से रोका, दक्ष, अब भी रोष से जलते हुए, उठकर चले गए और अपने घर लौट गए।

इस शाप के भीतर, उसकी निष्ठुरता से कहीं गहरी एक शिक्षा छिपी है। दक्ष का उद्देश्य शिव की मर्यादा छीनना था — उन्हें उन्हीं यज्ञ-आहुतियों में भाग से वंचित करना जो किसी देवता का ब्रह्माण्डीय क्रम में स्थान दर्शाती हैं (श्लोक 17-18)। किन्तु जिस भक्त का सन्तोष बाह्य सम्मान पर आधारित ही नहीं, उसे उस सम्मान के छिन जाने से कोई हानि नहीं पहुँचती; शिव वैसे ही “आत्मा में रमण करने वाले” बने रहते हैं, जैसा विदुर ने अध्याय के आरम्भ में उनका वर्णन किया था (श्लोक 2)। शाप यज्ञ-अग्नि का एक अंश छीन सकता था; वह उस वस्तु को नहीं छू सकता था जिस पर शिव कभी टिके ही नहीं थे। जब आगे यज्ञ श्रीहरि को ही अर्पित होकर सम्पन्न होता है (श्लोक 34-35), तब श्रीमद्भागवत मौन रूप से इसी सत्य की पुष्टि करता है: सच्ची उपासना कभी इस बात पर निर्भर नहीं थी कि कौन कहाँ बैठा है या किसे कितना भाग मिला — वह सदैव उस भगवान् के विषय में थी जो भक्ति मात्र से प्रसन्न होते हैं।

नन्दीश्वर का प्रति-शाप

अब कलह और फैल गया। भगवान् शिव के प्रमुख परिचर नन्दीश्वर को इस शाप का पता चला और वे शोक तथा क्रोध से व्याकुल हो उठे। वे दक्ष की ओर — और उन ब्राह्मणों की ओर जिन्होंने मौन रहकर इस निन्दा का अनुमोदन किया — मुड़े और अपना एक भयंकर शाप उच्चारित किया। यह मूर्ख, उन्होंने घोषित किया, जो अपने नाशवान शरीर को इतना महत्त्व देता है और निष्कपट शिव से द्वेष करता है, शरीर को ही आत्मा मानते हुए, सदा के लिए सत्य से विमुख हो जाए। घर, कर्मकाण्ड तथा भोग-लालसा में आसक्त, कर्मकाण्ड-ग्रन्थों के मोहक वचनों से भ्रमित, दक्ष आत्मा के सच्चे स्वरूप को भूलकर पशु के समान हो गया है; अतः, नन्दी ने कहा, वह स्त्रियों में अत्यधिक आसक्त हो, और शीघ्र ही उसका मुख बकरे के मुख में बदल जाए।

बुद्ध्या पराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिः पशुः ।

स्त्रीकामः सोऽस्त्वतितरां दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ॥ २३ ॥

buddhyā parābhidhyāyinyā vismṛtātma-gatiḥ paśuḥ strī-kāmaḥ so 'stv atitarāṁ dakṣo basta-mukho 'cirāt

अर्थ: बाह्य वस्तुओं में लगी बुद्धि के कारण, आत्मा के सच्चे स्वरूप को भूला यह पशुतुल्य दक्ष स्त्रियों में अत्यधिक आसक्त हो, और शीघ्र ही बकरे का मुख धारण करे। (स्कन्ध 4, अध्याय 2, श्लोक 23)



भगवान् शिव के प्रमुख परिचर नन्दीश्वर, शाप से शोकाकुल तथा क्रुद्ध, दक्ष तथा उसकी निन्दा का अनुमोदन करने वालों पर प्रति-शाप उच्चारित करते हैं (श्लोक 20-26)।

नन्दी ने और आगे जाकर घोषित किया कि जो कर्मकाण्ड-रूपी अज्ञान को ज्ञान मानकर उससे चिपके रहते हैं और भगवान् शिव का अनादर करते हैं, वे बार-बार जन्म लेंगे, उनका मन फूलों-सी मीठी, विपुल प्रलोभनकारी वाणी से भ्रमित रहेगा — और ऐसे ब्राह्मण संसार में भिखारियों की भाँति भटकेंगे, केवल धन, सुख तथा इन्द्रिय-तृप्ति को महत्त्व देते हुए।

भृगु का प्रति-शाप

यह वृद्धि यहीं न रुकी। नन्दी को ब्राह्मण-वर्ग को शाप देते सुनकर, ऋषि भृगु ने अपना एक प्रति-शाप उच्चारित किया, जिसे टालना कठिन था। जो भव के व्रतों का पालन करते हैं तथा ऐसी साधनाओं का अनुसरण करते हैं, उन्होंने कहा, वे सच्चे शास्त्रों के विरोधी हो जाएँगे; केवल वे ही, जिन्होंने पवित्रता त्याग दी है, जटा, राख तथा अस्थियाँ धारण करते हैं और मदिरा का आदर करते हैं, उस मार्ग की ओर खिंचेंगे। क्योंकि तुम (शिव के अनुयायी) वेदों तथा उनकी रक्षा करने वाले ब्राह्मणों की निन्दा करते हो, भृगु ने घोषित किया, इसलिए तुमने पाखण्डियों का मार्ग अपना लिया है — वेदों द्वारा निर्धारित शाश्वत, कल्याणकारी मार्ग से, जिसे स्वयं भगवान् विष्णु (जनार्दन) का प्रमाण प्राप्त है, विमुख होते हुए।

यहाँ श्रीमद्भागवत एक पीड़ादायक सत्य को उघाड़ता है: महान् जनों के बीच भी, आहत अभिमान हृदय से हृदय तक सूखी घास में आग की भाँति फैल सकता है, जब तक कि ज्ञानियों की एक पूरी सभा शाप के बदले शाप का लेन-देन न करने लगे।



ऋषि भृगु, नन्दीश्वर को ब्राह्मण-वर्ग को शाप देते सुनकर, शिव के मार्ग के अनुयायियों पर अपना एक प्रति-शाप उच्चारित करने के लिए उठते हैं (श्लोक 27-32)।

शिव का मौन प्रस्थान

इस सबके बीच — निन्दा, शाप, प्रति-शापों के बीच — भगवान् शिव स्वयं कुछ नहीं बोले। और अब, जब भृगु का शाप अभी भी वातावरण में गूँज रहा था, शिव चुपचाप उठकर अपने परिचरों सहित सभा से चले जाते हैं, हृदय में कुछ खिन्न, किन्तु प्रतिशोध के एक शब्द के बिना।

मैत्रेय उवाच

तस्यैवं वदतः शापं भृगोः स भगवान् भवः ।

निश्चक्राम ततः किञ्चिद्विमना इव सानुगः ॥ ३३ ॥

maitreya uvāca tasyaivam vadataḥ śāpaṁ bhṛgoḥ sa bhagavān bhavaḥ niścakrāma tataḥ kiñcid vimanā iva sānugaḥ

अर्थ: मैत्रेय ने कहा: जब भृगु इस प्रकार अपना शाप उच्चारित कर रहे थे, पूजनीय भगवान् भव (शिव), हृदय में कुछ खिन्न, अपने अनुयायियों सहित उस स्थान से चले गए। (स्कन्ध 4, अध्याय 2, श्लोक 33)



हर अपमान तथा शाप को पूर्ण मौन में सहते हुए, भगवान् शिव चुपचाप उठकर अपने अनुयायियों सहित सभा से चले जाते हैं, प्रतिशोध के एक शब्द के बिना (श्लोक 33)।

अध्याय कर्मकाण्ड-निरन्तरता के एक स्वर पर समाप्त होता है जो विडम्बना को और गहरा कर देता है। प्रजापतियों ने विधिपूर्वक हजार वर्ष तक यज्ञ जारी रखा — वह यज्ञ जिसमें श्रीहरि, परम पुरुष, आराध्य देव थे — और उसकी समाप्ति पर उन्होंने गंगा-यमुना के संगम पर स्नान किया और शुद्ध होकर अपने-अपने घर लौट गए। महान् अनुष्ठान चलता रहा; किन्तु एक कहीं बड़ी विपत्ति का बीज बोया जा चुका था, और वह, अध्यायों बाद, दक्ष के अपने ही यज्ञ के विनाश में पकेगा।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. अभिमान सम्मान को विष में बदल देता है। दक्ष ऐसी सभा में आए जो उनके सम्मान में उठ खड़ी हुई, फिर भी वे उस एक आसन पर अटक गए जो नहीं उठा। जब अहंकार अपमान ढूँढ़ता है, तो वह सदा एक पा ही लेता है — और वह एक कल्पित अपमान को जीवन भर की पुण्य-सम्पदा को नष्ट करने देता है (श्लोक 6-8)।
2. सच्चे महान् प्रतिशोध नहीं लेते। समस्त देवताओं के समक्ष निन्दित, शापित तथा अपमानित होकर भी भगवान् शिव एक शब्द से उत्तर नहीं देते; वे बस चले जाते हैं। उस कक्ष में दक्ष का रोष नहीं, अपितु शिव का मौन ही सच्चा बल है (श्लोक 8, 17, 33)।
3. क्रोध संक्रामक है। क्रोध में उच्चारित एक शाप एक प्रति-शाप को उकसाता है, जो दूसरे को, जब तक ऋषि तक फँस न जाएँ। यह अध्याय एक गम्भीर चेतावनी है कि अपमान को ले लेना विरले ही उसी तक सीमित रहता है जिसने पहले उसे लिया (श्लोक 18, 20-32)।
4. श्रद्धारहित कर्मकाण्ड खोखला है। दक्ष यज्ञ के आचार्य थे, फिर भी उनके हृदय में अपने समक्ष विराजमान योगियों के स्वामी का सम्मान करने का स्थान न था। भीतरी विनम्रता से विहीन बाह्य अनुष्ठान, यह कथा दर्शाती है, बालू पर बना घर है (श्लोक 12-16)।
5. शुभस्वरूप के प्रति श्रद्धा उचित है, चाहे उसका रूप कितना ही अपरम्परागत क्यों न हो। शास्त्र शिव को शान्त, आत्मतृप्त तथा समस्त वैर से मुक्त बताता है, और शिव के अपरम्परागत ढंग के प्रति दक्ष की अवहेलना को ही दोष मानता है — यह स्मरण कि पवित्रता को बाह्य रूप से न आँका जाए (श्लोक 2, 14-15)।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

दक्ष के पतन में कुछ लगभग असह्य रूप से मानवीय है। वे स्वभाव से न असुर हैं न खलनायक; वे एक सम्मानित पिता हैं, यज्ञों के महान् कर्ता, देवताओं की एक पूरी सभा द्वारा सम्मानित। और यह सब एक क्षण में विलीन हो जाता है क्योंकि एक प्राणी — सबसे सौम्य — उनके लिए खड़ा नहीं हुआ। कितना छोटा कारण, कितना विशाल विनाश। हम हृदय की इस गति को भली-भाँति जानते हैं: वह सभा जहाँ हमने हर अभिवादन गिना और केवल उस एक पर अटके रहे जो नहीं मिला, वह अपमान जिसे हमने तब तक दोहराया जब तक वह एक शिकायत में कठोर न हो गया। श्रीमद्भागवत दक्ष को नहीं छोड़ता, किन्तु वह हमें भी नहीं छोड़ता; वह उनके आहत अभिमान को एक दर्पण के रूप में हमारे सामने रखता है। और उस दर्पण के पास वह शिव का मौन रखता है — एक ऐसे हृदय की प्रतिक्रिया जो इतना भरा तथा इतना मुक्त है कि अपमान को उसमें अटकने के लिए कुछ मिलता ही नहीं। यह अध्याय शान्ति से यही पूछता है कि अगली बार जब हम स्वयं को अपमानित अनुभव करें, तो हम इन दोनों में से किसके समान बनना चुनेंगे।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज शिव के मौन का अनुशासन साधिए। एक छोटे-से अपमान को स्मरण कीजिए जिसे आप ढो रहे हैं — कोई अनकहा शब्द, कोई न मिला शिष्टाचार, कोई पहचान जो कभी न आई। उसे एक बार और दोहराने के स्थान पर, सचेत रूप से उसे रख दीजिए। शान्त बैठिए, श्वास लीजिए, और उस शिकायत को भगवान् को अर्पित कीजिए, यह दोहराते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” संकल्प कीजिए कि इस एक दिन आप अपने आहत अभिमान की रक्षा नहीं करेंगे, अपितु अपमान को अपने भीतर से वैसे ही निकल जाने देंगे जैसे वह शिव के भीतर से निकल गया — जलाने के लिए कुछ न पाते हुए।

उपसंहार

“दक्ष का शाप” ऊपरी दृष्टि से देवताओं के बीच एक पारिवारिक कलह की कथा है। किन्तु शापों तथा प्रति-शापों के नीचे यह इस बात का गहन अध्ययन है कि अभिमान एक भले व्यक्ति के साथ क्या करता है। दक्ष के पास सब कुछ था — वंश, विद्या, उन्हें सम्मान देती एक सभा, स्वयं योगियों के स्वामी से विवाहित एक कन्या — और उन्होंने यह सब एक न लौटाए अभिवादन पर अग्नि में डाल दिया। भगवान् शिव, सहनशक्ति की सीमा से परे अपमानित होकर, केवल मौन तथा एक शान्त प्रस्थान से उत्तर देते हैं, उसी शान्ति को साकार करते हुए जिस पर विदुर ने अपने आरम्भिक प्रश्न में विस्मय किया था। यज्ञ हजार वर्ष चला, किन्तु इस कथा द्वारा माँगी गई सच्ची आहुति सूक्ष्मतर है: सम्मान पाने की हमारी अपनी भूख का समर्पण। जैसा अगले अध्याय दर्शाएँगे, दक्ष द्वारा उस दिन उच्चारित शाप उनके अपने ही महान् यज्ञ को भस्म करने लौटेगा — इसका प्रमाण कि कोई भी अनुष्ठान, चाहे कितना ही भव्य हो, अभिमान से शासित हृदय के परिणामों से नहीं बच सकता।

श्रीमद्भागवतम् का यह दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (सम्पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, द्वितीय अध्याय।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust.
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं संस्तुति के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दर्शाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा संबद्धता अथवा समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-4-adhyay-2-daksha-ka-shaap.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

